वैज्ञानिक तकनीकों से बढ़ता कृषि उत्पादन

—डॉ. जगदीप सक्सेना

देश के सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में कृषि क्षेत्र का योगदान लगभग 14 प्रतिशत है और निर्यात से होने वाली विदेशी मुद्रा की आमदनी में इसकी लगभग 11 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। इन आर्थिक आंकड़ों से परे भारतीय कृषि का महत्व इस सच्चाई से भी उजागर होता है कि दुनिया के केवल 2.4 प्रतिशत क्षेत्र और 4.2 प्रतिशत पानी से हम विश्व की 17 प्रतिशत आबादी के भरण-पोषण में कामयाब हैं। तमाम प्रतिकूल परिस्थितियों और चुनौतियों के बावजूद देश ने नई वैज्ञानिक तकनीकों की मदद से सतत् खाद्य सुरक्षा हासिल की है, जो अपने-आप में गर्व और गौरव का विषय है।

विविध भौगेलिक एवं जलवायु दशाओं तथा दुर्गम स्थानों पर बसे भारत के लगभग छह लाख छोटे–बड़े गांव राष्ट्र की प्रगति, उन्नति, समृद्धि और विकास की धुरी हैं। समय–समय पर अनेक अध्ययनों और वैचारिक मंचों पर हुई चर्चाएं कहती हैं कि औद्योगीकरण और सूचना क्रांति के अश्वों पर सवार भारत के प्रगति रथ को गांवों से होकर गुजरना पड़ेगा। इसलिए भारत सरकार द्वारा 'ग्रामोदय से भारत उदय' की संकल्पना पर कार्य करते हुए समावेशी ग्रामीण विकास पर बल दिया जा रहा है।

व्यापक नज़रिए से देखें तो ग्रामीण विकास का अर्थ है ग्रामीण क्षेत्रों में प्रगति और उन्नति के लिए आवश्यक बुनियादी सुविधाओं के विकास के साथ गांव के निवासियों के जीवन–स्तर में सुधार और खुशहाली। इस कार्य में विज्ञान और तकनीक महती भूमिका निभा रहे हैं। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश की ग्रामीण आबादी लगभग 83.25 करोड़ आंकी गई है, जो देश की कुल आबादी की लगभग 70 प्रतिशत बैठती है। इतनी बड़ी आबादी का अधिकांश भाग आज भी अपनी आजीविका के लिए कृषि और संबंधित उद्यमों पर निर्भर है।

पूरे देश के परिप्रेक्ष्य में देखें तो लगभग आधी आबादी की आजीविका किसी ना किसी रूप में कृषि से जुड़ी है, जिसमें कृषि आधारित उद्योग भी शामिल हैं। यही कारण है कि कृषि विकास को ग्रामीण विकास का सशक्त माध्यम माना जाता है। इन्हीं विशेषताओं के कारण कृषि को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का मुख्य स्तंभ भी माना जाता है।

विज्ञान के बढ़ते कदम

देश में कृषि के विकास पर नज़र डालें तो आजादी के समय कृषि की दशा और खाद्य उत्पादन दयनीय अवस्था में थे। उपजाऊ भूमि का एक बड़ा भाग पाकिस्तान में चला गया था। गरीबी, कुदरत की मार, बढ़ती आबादी और वैज्ञानिक साधनों के अभाव के कारण अनाज उत्पादन इतना कम था कि हम जल्दी ही विदेशी अनाज के मोहताज हो गए। अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों ने भारत में भयंकर अकाल और भुखमरी की

कृषि अनुसंधान एवं विकास का राष्ट्रव्यापी नेटवर्क

देश में कृषि अनुसंधान, शिक्षा तथा प्रसार को गति देने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर) नामक शीर्ष संस्था तत्परता से कार्यरत है। यह भारत सरकार के कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय के मार्गनिर्देशन में कार्य करती है। परिषद के अंतर्गत कृषि अनुसंधान एवं विकास के लिए एक राष्ट्रव्यापी नेटवर्क विकसित किया गया है, जो भारत में फसल विज्ञान, बागवानी, मात्स्यिकी और पशु विज्ञान सहित कृषि से संबंधित सभी क्षेत्रों में समन्वय, मार्गदर्शन अनुसंधान प्रबंधन, शिक्षा तथा प्रसार के लिए कार्य करता है।

अनुसंधान संस्थान – परिषद के अंतर्गत देश के विभिन्न राज्यों में 102 कृषि अनुसंधान संस्थान कार्यरत हैं, जो अपने अधिदेश के अनुसार कृषि से संबंधित सभी क्षेत्रों/फसलों में शोध एवं कृषि प्रसार का कार्य करते हैं। इनमें से चार राष्ट्रीय संस्थानों को समकक्ष विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त है।

कृषि विश्वविद्यालय – देश में 75 कृषि विश्वविद्यालय विभिन्न राज्यों में स्थित हैं जो मुख्य रूप से कृषि शिक्षा एवं शोध का कार्य करते हैं। परिषद द्वारा इन्हें वित्तीय एवं तकनीकी सहायता के साथ मार्गदर्शन भी प्रदान किया जाता है। कृषि की नई चुनौतियों से निपटने के लिए परिषद द्वारा पाठ्यक्रमों व शोध विषयों में निरंतर बदलाव का कार्य किया जाता है। इसके साथ ही परिषद कृषि छात्रों को प्रोत्साहित करने के लिए फैलोशिप व स्कॉलरशिप भी प्रदान करती है।

कृषि विज्ञान केन्द्र (केवीके) – कृषि विज्ञान केन्द्रों की कुल संख्या 642 है, जो प्रत्येक ग्रामीण जिले में एक व बड़े जिलों में दो हैं। ये केन्द्र परिषद द्वारा विकसित फसलों की नई किस्मों तथा तकनीकों को खेतों तक पहुंचाने के लिए अग्रिम प्रदर्शन व प्रसार का कार्य करते हैं। इनके माध्यम से कृषि तथा किसान कल्याण की सरकारी योजनाओं तथा अन्य कार्यक्रमों के बारे में किसानों को जागरूक बनाने का कार्य भी किया जाता है।

भविष्यवाणी कर दी। परंतु सन् 1960 के दशक में गेहूं और धान की बौनी किस्मों के साथ खेत–खलिहानों में वैज्ञानिक उपायों को अपनाने से देश में हरितक्रांति का सूत्रपात हुआ।

तमाम पूर्वानुमानों और भविष्यवाणियों को झुठलाते हुए हमारा देश ना केवल अन्न–दासता से मुक्त हुआ, बल्कि हमेशा के लिए खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता भी हासिल कर ली। इसके बाद कृषि एवं संबंधित उद्यमों में विज्ञान व प्रौद्योगिकी का उपयोग निरंतर नए–नए आयामों के साथ जारी रहा। सीमित भूमि और साधनों के बावजूद सन् 1950–51 की तुलना में खाद्यान्न उत्पादन में पांच गुना, बागवानी में छह गुना, मछली में 12 गुना, दूध में आठ गुना और अंडा उत्पादन में 27 गुना वृद्धि दर्ज की गई। इसी दौरान कृषि अनुसंधान, शिक्षा और प्रसार को बल देने के लिए देश में एक मजबूत, व्यापक और प्रभावी अनुसंधान नेटवर्क विकसित किया गया, जिसने प्रत्येक चुनौती से निपटने के लिए विज्ञान व प्रौद्योगिकी आधारित समाधान विकसित किए और किसानों तक पहुंचाए भी। इन अनुसंधानों में कृषि के साथ ऐसे उद्यम भी शामिल किए गए, जो ग्रामीण विकास को बल देते हैं। इनमें मधुमक्खी पालन और घर के पिछवाड़े मुर्गीपालन जैसे परंपरागत व्यवसायों से लेकर मशरूम उत्पादन, कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन, बीज उत्पादन, ग्रीनहाउस में फूलों और सब्जियों का उत्पादन, और नर्सरी जैसे नए और अधिक लाभ देने वाले उद्यम भी शामिल किए गए। इन व्यवसायों को विज्ञान और प्रौद्योगिकी के साथ सरकार की योजनाओं का लाभ भी मिला, जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में आर्थिक प्रगति को एक ठोस आधार हासिल हुआ।

वर्तमान में भारतीय कृषि और इस पर आधारित ग्रामीण विकास के लिए सबसे बड़ी चुनौती जलवायु परिवर्तन नामक वैश्विक आपदा है, जिसके कारण देश के औसत तापमान में लगातार बढ़ोतरी दर्ज की जा रही है। वैज्ञानिक अध्ययन बताते हैं कि यदि तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी होती है, तो गेहूं, सोयाबीन, सरसों, मूंगफली और आलू की पैदावार में 3–7 प्रतिशत की कमी आ सकती है। वर्ष 2050 के परिप्रेक्ष्य में देखें तो सिंचित गेहूं और मक्का की पैदावार में 5–10 की कमी आंकी गई है। आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक में बारानी धान की पैदावार में 10–15 प्रतिशत की बढ़वार हो सकती है, परंतु पंजाब और हरियाणा में उपज में 15–17 प्रतिशत की गिरावट आ सकती हैं, जबकि अन्य सभी क्षेत्रों में 6–18 प्रतिशत की कमी आंकी गई है।

सामान्य तौर पर अधिकांश फसलों की उत्पादकता में वर्ष 2020 तक साधारण कमी आने की संभावना है, परंतु वर्ष 2100 तक 10–40 प्रतिशत कमी की आशंका जतायी गई है। इसके साथ ही बागवानी, पशुपालन और मछली पालन जैसे कृषि से जुड़े उद्यमों की उत्पादकता में भी कमी आने की संभावना जतायी गई है। जलवायु परिवर्तन की विपदा से सूखा, बाढ़, ओलावृष्टि और तूफान जैसी प्राकृतिक आपदाओं की तीव्रता तथा प्रकोप बढ़ने लगा है, जिससे देश की खाद्य सुरक्षा पर चोट पड़ना स्वाभाविक है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की सहायता से जलवायु परिवर्तन का सामना करने, इसके प्रभावों को कम करने तथा किसानों की आजीविका सुरक्षित रखने के लिए वर्ष 2011 से 'निक्रा' (नेशनल

मिट्टी की जांच की नई तकनीकें

खेतों की उपज बढ़ाने में मृदा स्वास्थ्य के महत्व को देखते हुए भारत सरकार द्वारा प्रत्येक किसान को मृदा स्वास्थ्य कार्ड देने का महत्वाकांक्षी कार्यक्रम चलाया जा रहा है। इस अभियान को सफल बनाने के उद्देश्य से मिट्टी की आसान और सटीक जांच के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा तीन यंत्र विकसित किए गए हैं।

मृदा परीक्षक यंत्र – भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल द्वारा मिट्टी की जांच करने वाली मिनीलैब का विकास किया गया है, जिसे मृदा परीक्षक का नाम दिया गया है। यह एक पोर्टेबल, सटीक मात्रा बताने वाला तथा कम लागत का यंत्र है। यह यंत्र मृदा के विशेष गुणों जैसे– पीएच–मान, विद्युत चालकता (ई.सी.), जैविक कार्बन, मृदा में उपलब्ध पोषक तत्वों– नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटेशियम, गंधक तथा सूक्ष्म पोषक तत्व – जस्ता , बोरान और लौह की मात्रा का पता लगा सकता है। यह यंत्र मिट्टी के प्रकार व फसल के अनुसार उर्वरक की सिफारिश भी करता है, जिसे किसान के मोबाइल पर एस.एम. एस. द्वारा भेजा जाता है।

मृदा नमी सूचक यंत्र – गन्ना प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर के वैज्ञानिकों ने सीधे खेतों में उपयोग के लिए मृदा नमी सूचक यंत्र का विकास किया है। यह बैटरीचालित यंत्र खेत में तत्काल नमी की मात्रा बताता है। यह यंत्र सेंसर आधारित है, जिसे खेत की मिट्टी में प्रवेश कराते ही यंत्र का इलेक्ट्रॉनिक डिस्प्ले सर्किट नमी के स्तर को रंगीन बत्तियों (एलईडी) द्वारा दर्शाता है। इस यंत्र में चार रंगों की बत्तियां लगी होती हैं। सबसे ऊपर नीला रंग प्रचुर मात्रा में नमी दर्शाता है। हरा रंग उचित मात्रा में नमी दिखाता है और नारंगी रंग सावधान अर्थात सिंचाई का निर्देश देता है, वहीं लाल रंग सामान्य से कम नमी प्रदर्शित करता है। इस यंत्र से जल संरक्षण के साथ ही सिंचाई में अतिरिक्त खर्च की बचत होती है।

पूसा एसटीएफआर मीटर किट – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा विकसित इस डिजिटल मृदा परीक्षक व उर्वरक निर्देशक किट (एसटीएफआर) की सहायता से किसान 100 फसलों के लिए आवश्यक आदानों व मृदा के 12 मानदंडों की जांच आसानी से करा सकते हैं। इसके द्वारा मृदा की विद्युत चालकता, जैविक कार्बन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, जिंक, सल्फर, बोरान, लौह, मैगनीज, पीएच–मान, क्षारीय मृदा में कैल्शियम और जिप्सम की स्थिति के बारे में सटीक जानकारी मालूम की जाती है। इस यंत्र से प्राप्त नतीजे किसानों को एस.एम.एस के माध्यम से भेजे जाते हैं। इन जांच परिणामों के माध्यम से मिट्टी की उर्वरकता तथा उत्पादकता बढ़ाने के साथ ही किसानों की आमदनी वृद्धि में भी सहायता मिलती है।

इनोवेशंस ऑन क्लाइमेट रेज़िलियेंट एग्रीकल्चर) नामक एक राष्ट्रव्यापी शोध परियोजना चलायी जा रही है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के नेतृत्व में चलायी जा रही इस परियोजना में फसलों, पशुपालन और प्राकृतिक संसाधन संरक्षण जैसे अहम् मुद्दों को शामिल किया गया है। साथ ही एक विशेष अभियान के रूप में देश के 27 राज्यों के 100 जिलों में जलवायु अनुकूल प्रौद्योगिकियों को किसानों के खेतों पर प्रदर्शित किया जा रहा है। एक विशेष उपलब्धि के रूप में 'निक्रा' परियोजना के अंतर्गत 614 जिलों के लिए जिला आकस्मिकता योजनाएं बनाई गई हैं, जिनमें किसानों को विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं के समय अपनी आजीविका तथा कृषि उत्पादन को सुरक्षित रखने के वैज्ञानिक उपाय सुझाए गए हैं। इन उपायों को अपनाने के लिए आवश्यक बीज, पौध सामग्री, मशीनें, अन्य सामग्री तथा जानकारी भी प्रदान की जाती है। इन योजनाओं और वैज्ञानिक उपायों का सीधा प्रभाव पिछले वर्ष सूखे के दौरान देखने को मिला। राष्ट्रीय–स्तर पर वर्षा में लगभग 14 प्रतिशत की कमी आई, परंतु खाद्यान्न में कमी को 2.5 प्रतिशत पर सीमित किया जा सका।

नई चुनौतियां, नई किस्में, नई खूबियां

कृषि उत्पादकता बढ़ाकर ग्रामीण विकास को तेज करने में वैज्ञानिक प्रयासों द्वारा विकसित फसलों की नई किस्में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। फसल प्रजनन की आधुनिक विधियों का उपयोग करते हुए देश भर में मनचाही खूबियों वाली फसलों की उन्नत किस्में विकसित की जा रही हैं। आवश्यकता और मांग को देखते हुए रोगों के लिए सहनशीलता या प्रतिरोधिता, सूखा या बाढ़ जैसी दशाओं के लिए अनुकूलता और बेहतर गुणवत्ता जैसी खूबियों का समावेश किया जा रहा है। हाल में वैज्ञानिक फसलों के पोषणमान को बढ़ाने के प्रयासों में भी कामयाब रहे हैं। फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के लिए पिछले दो वर्ष (जनवरी, 2014 से दिसम्बर, 2015) में 227 नई किस्में विकसित/जारी की गईं, जबकि 2015–16 के दौरान अनाज की 19, दलहन की 20 और तिलहन की 24 सूखा–प्रतिरोधी एवं बाढ़–सहनशील किस्में विकसित/जारी की गईं।

देश की खाद्य सुरक्षा में धान की मुख्य भूमिका को देखते हुए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से धान की 'स्वर्णा सब–1' नामक किस्म

विकसित व जारी की गई। यह किस्म उपज और गुणवत्ता संबंधी खूबियों के अलावा दो सप्ताह से अधिक तक पानी में पूरा डुबाव भी सहन कर सकती है। लगभग 140 दिन में परिपक्व होकर औसतन 5.0–5.5 टन प्रति हेक्टेयर की उपज देती है। मुख्य रूप से उड़ीसा के लिए जारी यह किस्म पूर्वी राज्यों के अलावा बाढ़ से त्रस्त उत्तरी और दक्षिणी राज्यों में भी लोकप्रिय है। पूरे देश में इसका प्रचलन बढ़ाने के लिए इस किस्म को राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन में शामिल कर इसके बीज किसानों को बांटे जा रहे हैं। इसी कड़ी में 'वर्षाधान' नामक किस्म भी है, जो लंबे समय तक लगभग 75 सेंटीमीटर तक पानी में डुबाव सहन कर सकती है।

चावल की खेती करने वाले किसानों को सूखे की समस्या से उबारने के लिए 'सहभागी धान' नामक किस्म विकसित की गई है, जिसे लंबी अवधि तक सूखा सहनशील पाया गया है। इसे उड़ीसा और झारखंड के सभी क्षेत्रों तथा दशाओं में खेती के लिए जारी किया गया है। 'शुष्क सम्राट' नामक एक अन्य किस्म सूखा–ग्रस्त पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और छत्तीसगढ़ में खेती के लिए जारी की गई हैं, जिनमें 'आईआर 64 डीआरटी–1' किस्म 20–25 दिन तक पानी की कमी बखूबी सहन कर सकती है। बारानी यानी वर्षा–निर्भर दशाओं में इसकी उपज 2.5–3.0 टन तक सीमित रहती है। 'नवीन', 'अंजलि, 'बिरसा विकास धान' और 'अभिषेक' अन्य सूखा–सहनशील किस्में हैं।

धान के जरिए प्रोटीन कुपोषण का सामना करने के लिए 'हीरा' नामक किस्म पहचानी गई है, जिसमें प्रोटीन की मात्रा लगभग 12 प्रतिशत है, जबकि साधारण किस्मों में केवल 8 प्रतिशत प्रोटीन मौजूद होता है। 'सीआर धान 310' किस्म भी 10.3 प्रतिशत प्रोटीन के साथ इस संदर्भ में उत्तम मानी जाती है। 'डीआरआर धान 45' को उच्च जिंक वाली किस्म के रूप में पहचाना गया है और इसे प्रचलित किया जा रहा है। इस किस्म के पॉलिश चावल में 19.5 पीपीएम ज़िंक की मात्रा मौजूद होती है।

खाद्य सुरक्षा में अहम् योगदान करने वाली दूसरी फसल गेहूं को कई बार सूखे के साथ सामान्य से अधिक तापमान की समस्या भी झेलनी पड़ती है। इसके निदान के लिए अनुसंधान संस्थानों द्वारा इन दोनों ही प्रतिकूल दशाओं के प्रति सहनशील किस्मों का विकास किया गया है। 'एचडी 2888' किस्म उत्तर–पूर्वी मैदानों में सूखे या नमी की कमी को आसानी से सहन कर लेती हैं और 23 क्विंटल प्रति हेक्टेयर की अच्छी उपज भी देती हैं। इसके साथ ही यह किस्म इस क्षेत्र के प्रमुख रोगों हेतु प्रतिरोधी भी है। 'एचआई 1531' किस्म जल्दी तैयार होने वाली अधबौनी किस्म है, जिसे मुख्य रूप से सूखा सहनशीलता किस्म के रूप में विकसित किया गया है। 'कौशाम्बी' (एचडब्ल्यू 2045) किस्म को उत्तर–पूर्वी क्षेत्रों के मैदानी भागों में खेती के लिए विकसित

और जारी किया गया है। यह किस्म पकने की अवस्था में ऊंचे तापमान को सहन कर अच्छी उपज देती है।

फलों को अधिक पोषणवान बनाने के लिए हाल में अंगूर की 'मेदिका' नामक किस्म तैयार की गई है, जिसके दानों का रंग लाल–गुलाबी है। स्वास्थ्य को अनेक तरह से लाभ पहुंचाने वाले एंटीऑक्सीडेंट की मात्रा सामान्य अंगूरों से कई गुना ज्यादा है। इसी तरह अमरूद की एक संकर किस्म 'अर्का किरण' विकसित की गई है, जिसमें लाइकोजीन नामक रंजक (पिगमेंट) की मात्रा सामान्य से अधिक (6–7 मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम) है। लाइकोपीन की अधिकता से हृदय रोगों तथा विभिन्न प्रकार के कैंसर से सुरक्षा प्राप्त होती है।

प्रकृति संरक्षण के लिए विज्ञान

बदलते पर्यावरण परिवेश में कृषि उत्पादन को टिकाऊ बनाए रखने के लिए भूमि (मृदा) और जल का संरक्षण आवश्यक है। इसे ध्यान में रखते हुए वैज्ञानिकों द्वारा ऐसी अनेक तकनीकें तथा विधियां विकसित की गई हैं, जो मिट्टी के उपजाऊपन का संरक्षण करती हैं तथा सिंचाई के पानी की बचत और जल के कुशल उपयोग को बढ़ावा देती हैं। इस प्रकार की संसाधन–संरक्षण प्रौद्योगिकियों में शून्य जुताई (जीरो टिलेज) तकनीक सर्वप्रमुख है, जिसका गंगा के मैदानी भागों में धान–चावल फसल चक्र में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा रहा हैं। इसके अंतर्गत धान की फसल की कटाई के बाद खेतों में जुताई नहीं की जाती, बल्कि जीरो टिलेज मशीन द्वारा गेहूं की सीधे बुआई कर दी जाती है। इसमें धान की फसल के अवशेषों (ठूंठों) को खेत में ही छोड़ दिया जाता है, जिससे भूमि का उपजाऊपन बढ़ता है। खेत की जुताई ना करने से मिट्टी के सूक्ष्म पर्यावरण का संरक्षण होता है तथा जुताई और खेत की तैयारी पर होने वाली खर्च में भी

लगभग 5–10 प्रतिशत की बचत होती है। समय की बचत के कारण किसान भाई ठीक समय पर गेहूं की बुआई कर देते हैं, जिससे उपज में 6–10 प्रतिशत की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त सिंचाई के पानी की भी 15–20 प्रतिशत की बचत देखी गई है, जो कृषि के लिए पानी के बढ़ते संकट को देखते हुए सराहनीय है। यह भी देखा गया है कि इस तकनीक से गेहूं की बुआई करने पर गेहूं की फसल में गुल्ली–डण्डा नामक विनाशक खरपतवार भी नहीं पनपता, जिससे खरपतवारनाशक दवाओं के छिड़काव की जरूरत नहीं होती। इस तरह एक ओर पर्यावरण संरक्षण को बल मिलता है तो दूसरी ओर खेती की लागत में भी बचत होती है। धान की फसल के बाद जीरो टिलेज की सफलता को देखते हुए अनेक क्षेत्रों में बाजरा, ज्वार, मूंग तथा कपास जैसी फसलों की कटाई के बाद जीरो टिलेज मशीन से गेहूं की सीधी बुआई का प्रतिशत बढ़ रहा है। इस मशीन की कीमत लगभग 50 हजार रुपये है, जिस पर सरकार द्वारा 15,000 हजार रुपये तक का अनुदान किसानों को दिया जाता है।

'फर्ब' नाम से लोकप्रिय एक अन्य बुआई प्रणाली में गेहूं या किसी अन्य फसल की बुआई उठी हुई चौड़ी क्यारी में की जाती है और इस तरह की क्यारियों के बीच कूड़ बनी होती है, जिसे सिंचाई का पानी दिए जाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि का उपयोग करने से समतल खेत की तुलना में सिंचाई के पानी में 30 प्रतिशत की बचत होती है और पैदावार भी लगभग 20 प्रतिशत अधिक मिलती है। इस विधि से गेहूं की बुआई करने पर बीजों की मात्रा में 30 से 50 प्रतिशत की बचत देखी गई। इस विधि को धान में इस्तेमाल करने पर उपज में विशेष बढ़ोतरी नहीं हुई, परंतु सिंचाई के पानी में 25 से 50 प्रतिशत की बचत देखी गई। इसी से मिलती–जुलती एक अन्य विधि में उठी हुई क्यारियों की जगह 90 सेंटीमीटर चौड़ी क्यारियां बनाई जाती हैं, जिनके बीच में 45 सेंटीमीटर चौड़ी कूंड़ होती है और फसल की बुआई 30 सेंटीमीटर की दूरी पर बनी कतारों पर करती है। इस विधि में पानी की 25–30 प्रतिशत बचत होती है और सिंचाई पर लगने वाले समय में भी 25–30 प्रतिशत की कमी देखी गई है। फसलों की उत्पादकता 5–10 प्रतिशत तक बढ़ जाती है। चौड़ी क्यारी बनाने के लिए एक मशीन तैयार की गई है, जिसकी लागत लगभग 45 हजार रुपये है, परंतु इसके लिए विभिन्न सरकारी योजनाओं के अंतर्गत किसानों को अनुदान भी प्राप्त होता है। यह तकनीक उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, पंजाब, महाराष्ट्र, कर्नाटक, राजस्थान और तमिलनाडु के किसानों के बीच लोकप्रिय है।

हाल में विकसित एक नई विधि के अंतर्गत धान के बीजों की सीधे खेत में रोपाई की जाती है, जिसके अनेक लाभ होते हैं। इस विधि में धान के खेत में पानी नही खड़ा रखना पड़ता, जिससे सिंचाई के पानी की लगभग 30 प्रतिशत तक बचत होती है। खेत में पानी खड़ा ना रहने के कारण ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन पर रोक लग जाती है। बुआई से पहले खेत में गीली जुताई की आवश्यकता नहीं रहती, जिससे पानी की बचत के साथ मजदूरी की बचत होती है और मिट्टी का उपजाऊपन भी प्रभावित नहीं होता। नर्सरी में पौध तैयार करने की जरूरत नहीं होती, जिससे मेहनत, समय और खर्च की बचत होती है। इस विधि से तैयार फसल में पैदावार को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाने वाले बकाने रोग का प्रकोप परंपरागत फसल की तुलना में कम होता है, जिससे पैदावार बढ़ती है। धान की सीधी बुआई विधि से खेती करने पर कुल लगभग 8,500 रुपये प्रति हेक्टेयर की बचत होती है। यह विधि पंजाब तथा हरियाणा में किसानों के बीच विशेष लोकप्रिय हो रही है।

वर्षा जल से हर खेत को पानी

तमाम प्रयासों के बावजूद हमारे देश में आज भी लगभग 60 प्रतिशत कृषि भूमि पर फसलों की सिंचाई वर्षा पर निर्भर रहती है, जिसे 'बारानी खेती' कहा जाता है। बारानी खेती को कामयाब बनाने के लिए आवश्यक है कि खेतों पर वर्षा के पानी को संग्रह किया जाए, जिससे मानसून के बाद इस पानी से जीवनदायी सिंचाई की जा सके। इसके लिए वैज्ञानिकों ने जल संरक्षण व जलसंग्रह की उपयोगी विधियां विकसित की हैं, जिन्हें लोकप्रिय बनाने के लिए प्रयास किए जा रहे हैं। आमतौर पर किसान खेतों में या खेतों के आसपास छोटे तालाब बनाकर वर्षा जल का संग्रह करते हैं, परंतु इससे बड़ी मात्रा में भूमि में पानी का रिसाव हो जाता है। पानी के इस नुकसान को रोकने के लिए तालाब में प्लास्टिक की चादर बिछाने की सलाह दी गई है। यदि साधन हो तो पक्का तालाब बनाना सबसे अधिक कारगर होता है। वर्षा–जल को भंडारित करने हेतु टैंक निर्माण को चार प्रकारों में बांटा जा सकता है। पूरा मिट्टी से बना भंडारण टैंक, जिसे बनाते समय स्थानीय मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। टैंक का तल सख्त हो जिससे पानी न सूखे। इसके साथ ही दीवारों को भी चिकनी मिट्टी से बनाया जाता है ताकि पानी का कम से कम नुकसान हो। यह टैंक सही रखरखाव से 5–8 वर्ष तक कार्य कर सकता है तथा 68 रुपये प्रति घन मी. की दर से लागत होती है। मिट्टी टैंक की दीवारों और तल की अगर पत्थर से पिचिंग कर दी जाए तो इस टैंक की उम्र 10 से 15 वर्ष तक हो सकती है तथा 110 रुपये प्रति घन मी. के करीब इसकी लागत होती है। सीमेंट कंक्रीट से भी टैंक निर्माण किया जा सकता है जो पहले टैंकों की तुलना में एक मजबूत विकल्प है। इस स्थायी टैंक को बनाने में 475 रुपये प्रति घन मी. के करीब खर्च आता है, जो 20 से 25 साल तक चल सकता है। लोहे तथा सीमेंट की मदद से

भी भंडारण टैंक बनाए जाते हैं जिसे बनाने में लगभग 875 रुपये प्रति घन मी. के करीब खर्च आता है जो बहुत कम रखरखाव पर भी 40 से 45 साल तक कार्य कर सकता है। आकार की दृष्टि से इन्हें समान लम्बाई, गोलाकार, त्रिभुजाकार बनाया जा सकता है।

सामुदायिक तौर पर गांवों में रिसन तालाब या परकोलेशन टैंक किसी ऐसे स्थान पर बनाया जा सकता है, जहां मिट्टी में पानी सोखने की क्षमता अधिक हो। यह निर्माण उस क्षेत्र में किया जाता है जिसके निचले क्षेत्र में कुएं या नलकूप उपलब्ध हों। इन निर्मित तालाबों में वर्षा जल इकट्ठा हो जाता है, जो तली से रिसकर भू–जल स्तर को बढ़ाता है। एक अन्य तकनीक के अंतर्गत खेतों में कंटूर बंड का निर्माण किया जाता है। इससे खेत में अधिक देर तक पानी रुका रहता है। इसके साथ ही मिट्टी के कटाव और क्षरण को रोका जा सकता है। एक अन्य विधि में खेतों में मेड़ बंधान व कुंडिया निर्माण का कार्य किया जाता है। इसमें खेत के ढाल की ओर कुंडियों का निर्माण करना चाहिए तथा इसकी मिट्टी को मेड़बंदी में प्रयोग करना चाहिए। इससे भूमि का कटाव कम होगा तथा कुंडियों की सहायता से जमीन में पानी का संरक्षण होगा। पहाड़ी इलाकों में ढाल पर पत्थर का बांध बनाकर पानी को रोकने की सलाह दी गई है, इसे 'कंटूर ट्रेंच' कहा जाता है।

सिंचाई जल की प्रत्येक बूंद से अधिक उपज (मोर क्रॉप, पर ड्रॉप) प्राप्त करने के लिए जल उपयोग की कुशलता व दक्षता बढ़ाने की विधियां विकसित की गई हैं, जिन्हें सामूहिक तौर पर सूक्ष्म सिंचाई तकनीकें कहा जाता है। इनमें सबसे अधिक लोकप्रिय टपक सिंचाई है, जो ड्रिप इरीगेशन के नाम से प्रचलित है। इसमें प्लास्टिक के पाइप और एमिटर की सहायता से सिंचाई जल की एक–एक बूंद को सीधे पौधे के जड़ क्षेत्र तक पहुंचाया जाता है। इससे पानी का वाष्पीकरण कम हो जाता है तथा मिट्टी की सतह से पानी बहकर नुकसान भी नहीं होता। इस विधि से पानी की 50 से 60 प्रतिशत तक बचत की जा सकती है और फसलों की पैदावार भी 30–40 प्रतिशत तक बढ़ती है। सिंचाई के पानी में तरल उर्वरक मिलाकर देने से महंगे रसायानिक उर्वरकों की भी बचत होती है। इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से फलों एवं सब्जियों में किया जाता है, परंतु आजकल अन्य फसलों में भी इसकी लोकप्रियता बढ़ रही है। टपक सिंचाई के लिए खेत में सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली की स्थापना करनी पड़ती है, जिसके लिए केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों द्वारा अनुदान दिया जाता है। सूक्ष्म सिंचाई की एक अन्य विधि फव्वारा सिंचाई या स्प्रिंकलर सिंचाई के नाम से लोकप्रिय है। इसमें स्प्रिंकलर के माध्यम से पानी का बरसात की तरह खेतों पर छिड़काव किया जाता है। यह विधि टपक सिंचाई जितनी प्रभावी नहीं है परंतु इसके उपयोग से भी सिंचाई के पानी की सार्थक बचत होती है।

उजली ऊर्जा की उजली किरणें

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए ऊर्जा के प्राकृतिक और प्रदूषण मुक्त स्रोतों के उपयोग को बढ़ावा दिया जा रहा है। अक्षय ऊर्जा के अनेक स्रोत हैं, परंतु गांवों में उपयोग के लिए मुख्य रूप से सौर ऊर्जा तथा बायोगैस अधिक अनुकूल हैं। इस संभावना को देखते हुए फसलों की सिंचाई के लिए सौर ऊर्जा से चलने वाले सिंचाई पम्प विकसित किए गए हैं, जिनका इस्तेमाल पीने के पानी को खींचने के लिए भी किया जा सकता है। इनके उपयोग से सिंचाई के लिए डीजल के इस्तेमाल को कम से कम किया जा सकता है, जिससे पर्यावरण संरक्षण होता है और धन की बचत भी होती है। केवल एक हॉर्स पॉवर का पम्प लगाने से लगभग 10 से 12 हेक्टेयर खेत की सिंचाई की जा सकती है। खेतों में दवाओं के छिड़काव के लिए सौर ऊर्जा से चलने वाली छिड़काव प्रणाली विकसित की गई है, जो एक समान दबाव से दवा का छिड़काव करती है और इसमें मेहनत भी कम लगती है। कृषि उत्पादों को सुखाने के लिए सोलर ड्रायर विकसित किए गए हैं, जो विशेष रूप से फल और सब्जियों को सुखाकर उनका टिकाऊपन बढ़ाते हैं तथा मूल्यवर्धन भी करते हैं।

ग्रामीण विकास में बायोगैस लंबे समय से अहम भूमिका अदा कर रही है। हाल में वैज्ञानिक विधियों से बायोगैस उत्पादन प्रणलियों को अधिक सक्षम व कुशल बनाया गया हैं। आधुनिक बायोगैस संयंत्र कच्ची सामग्री का अपेक्षाकृत कम उपयोग करके अधिक मात्रा में बायोगैस का उत्पादन करते हैं। गांव में बायोगैस का उपयोग मुख्य रूप से भोजन पकाने तथा रोशनी के लिए किया जाता है, परंतु हाल में हुए विकास के कारण अब बायोगैस की सहायता से मोटर/इंजन भी चलाया जा सकता है, जिनकी शक्ति का आवश्यकता के अनुसार उपयोग किया जा सकता है। धान की भूसी तथा अन्य कृषि अवशेषों के उपयोग के द्वारा बायोमॉस आधारित स्वच्छ ऊर्जा बनाने की तकनीक भी ग्रामीण क्षेत्रों में लोकप्रिय हो रही है।

कृषि तथा ग्रामीण विकास के क्षेत्र में वैज्ञानिक विधियों तथा तकनीकों के उपयोग से देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बदलाव की एक नई लहर चल पड़ी है। देश के कोने–कोने में वैज्ञानिक तकनीकें पहुंचने से एक नए, समृद्ध व सम्पन्न ग्रामीण भारत का उदय हो रहा है।

(प्रधान संपादक (हिन्दी प्रकाशन),
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन–1, पूसा रोड, नई दिल्ली–110012)
ई–मेल : jgdsaxena@gmail.com